(2)

निवेदन

कामनाएं बहुत हैं हृदय में,
एक भी किंतु होती न पूरी।
देखती हूँ कभी तो सविस्मय,
बनती अपने हृदय से भी दूरी।।1।।

ध्यान मैंने लगाया निरंतर,
उर के मंदिर में तुझको बिठाकर।
तू न समझा कभीे भाव मेरे,
मिलता अब तक तो भगवान आकर।।2।।

जब भी मिलते हो तुम,
भाव अनुराग के मैं दबाती।
भावना होके अति ही लजाती,
और भीतर हृदय के समाती।।3।।

शब्द स्वीकृति के लगते हैं प्यारे,
जीभ बाहर न उनको है लाती।
भेद पाने जो जाती है तुम तक,
दृष्टि मुग्धा नहीं लौट पाती।।4।।

स्नेह श्रद्धा है अनुराग या फिर,
भाव तेरा समझ में न आता।
देख मुझको तुम्हारे वदन पर,
दीप्त अरुणिम विषद हास्य छाता।।5।।

प्राण पुलकित किए जा रहा है,
हो भले मेरा अनुमान झूठा।
भ्रान्ति मेरी है तो भी है मीठी,
स्वप्न भी हो तो ये है अनूठा।।6।।

चन्द्र तारक न हों हो अंधेरी,
मोह रजनी कभी भी बीते।
काम्य मुझको न लाली ऊषा की,
जाग यदि हम गए होंगे रीते।।7।।

वर्ण पीला मुझे है लुभाता,
जानकर वैसे परिधान पहने।
पुष्प श्वेताभ मुझको हैं रुचिकर,
तुम बनाती हो अलकों के गहने।।8।।

तुम समझना न इसको उपेक्षा,
रूप की मैं न करता बड़ाई।
उग्र आलोचना भी करूं यदि,
तुम समझना न इसको लड़ाई।।9।।
रिक्त शब्दों से मुझे घृणा है,
और आती नहीं चाटुकारी।
स्वप्न, भावों को उद्दीप्त करके,
मैं बनाता नहीं व्योमचारी।।10।।

दीप्ति आंखों की बनती निवेदन,
मौन की गूंजती एक भाषा।
हास तेरा अलोकिक सा वाले,
मेरे मन में जगाता है आशा।।11।।
राग पूरित हृदय तेरा लगता,

किंतु होता न विश्वास मुझको।
कान्त कैसे बनूँगा अकिंचन,
पात्रता का न आभास मुझको।।12।।

उर्मियों से रहित मैं जलाशय,
तुम तरंगित हो गतिमान सरिता।
गद्य सा मैं सुलभ किंतु नीरस,
तुम हो रसमय मसृण कान्त कविता।।13।।

तुम हो कादम्बिनी शून्य नभ में,
शक्ष्य श्यामल धरा की पुलक सी।
एक दीपक का मैं हूँ उजाला,
तुम हो शैया की उज्जवल झलक सी।।14।।
व्योम मेरा नहीं है असीमित,
पंख भी हैं उमंगें भी मन में।
एक डोरी से भू से बंधा हूँ,
साथ कैसे उड़ूं मैं गगन में।।15।।

योग होता है तो जागती है,
मन में चिन्ता सुनो क्षेम की भी।
नीर निर्धन की मिलकर भी हरती,
एक प्रतिमा सुघड़ हेम की भी।।16।।

मैं अकेला था तो थी न चिन्ता,
पा के खोने का भय अब लगा है।
स्वाद माना क्षणिक है सुधा का,
लोभ उर में असीमित जगा है। ।।17।।

शिव कुमार मिश्र